साधना की सही दिशा

ओम तत्सदात्मने नमः

ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, भय, बैर विरोध, मोह ममता ये सब मन की कमजोरी से होते हैं। द्वैत बुद्धि है जब तक। जैसे कहा गया है,

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।

भय का भी यही कारण है। समत्व आ जाय, सही बोध हो जाय तो निर्भय हो जाय। पहले हमको भी भय बहुत लगता था। और हम आ गए यहाँ (धारकुंडी)। यहाँ गुफा में शेर रहता था। इधर जंगल में भी शेर रहते थे। आदमी कोई, यहाँ आता नहीं था। तो हम सोचे कहाँ आकर फंस गये? ये हमें खा डालेंगे–शेर भालू। कहाँ की सधुवई, कहाँ का दंद। तो हम बैठकर सोचा करें, कि भगवान जाय भाड़ में, पहले इनसे कैसे छुटकारा मिले? यहाँ हम बाहर बैठा करें, गुफा में सफाई नहीं थी। गुफा में एक तरफ थोड़ा ऊँचा था। किसी ने धूनी लगा दी, तो हम बैठ गये। और रामपुर से दो आदमी आए थे, उन्हें हमने भगा दिया। बैठे तो एक सर्प दिखाई पड़ा। उधर देखे तो दूसरा सर्प दिखाई दिया, उधर से बिलबिलाते चले आवें पाँच–पाँच सात–सात सर्प, तो हमने कहा अब यह कहाँ का दर्द रच गया? भाड़ में जाय। कभी मन में यह भी आता था। हमने सोचा कि क्या किया जाय? तो अन्दर से आया कि भगवान सर्पो में भी हैं, भगवान शेर में भी हैं। भगवान तो कण–कण में हैं। तो यह हमारी जानकारी की कमी है, यह साधक की अपनी कमी है। और कहते हैं कि–

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।"

महात्मा के हृदय में अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है, तो अपने और शेर एक साथ पानी पीते हैं। अहिंसा जहाँ प्रतिष्ठित हुई, तहाँ क्रोध का त्याग करके, बैर विरोध का त्याग करके, एक आत्मा देखता है। तो हममें यहाँ, यह सधुवई कैसे आयेगी? कैसे समझ में आयेगा? पहले तो यह भय दूर हो। तो फिर हम मेहनत किये खूब, दो तीन दिन। तो अन्दर से आया, कि अच्छा कोई जानवर आवे तो हम बतावें। ऐसे नहीं बनता। तो बस पहले तो एक अजगर निकला, फायं फायं करे। बहुत बड़ा मुँह था, और तीन चार हाँथ निकलकर घुसा था। सुना था, कि यहाँ पर पाण्डवों को निगल लिया था। तो हमने कहा–गये अब! अब क्या किया जाय? तो फिर मामला हल हो गया। तो हम लकड़ी जलाये बैठे थे। अन्धेरा हो गया था, रात के 8, 9 बजा रहा। तो वह अजगर ऐसे–ऐसे करते, थोड़ा इधर–उधर चला गया। फिर करीब डेढ़ सौ सांप

निकले, और हमें चारों तरफ से घेर लिया। फिर वो नहीं बोले, सब निकल गये, चुपचाप।

यहाँ शंकर जी का शिवलिंग उधर नीचे में था। हमारा आसन इधर ऊँचे में था। यहाँ पहले एक बाबा आया करता था। वह बताया करे, कि यह शंकर जी की गुफा है– यहाँ आपको विघ्न आएगा। आपशंकर जी के ऊपर आसन लगाए हैं। शंकर जी नीचे हैं, यह ठीक नहीं है। वह कभी–कभी रहा करता था, फिर चला जाता था। उसने कहा, यह सिद्ध जगह है। आप यहाँ न रहिये,उधर ऊपर रहिये। यहाँ दो एक सिद्ध महात्मा, सतयुग वाले रहा करते हैं। वो आपको विघ्न डाल देंगे। तुम्हारी वृत्ति खराब हो जायेगी। तो हमने कहा, हो जायेगी, हो जायेगी। हम तो यहीं बैठेंगे। और कहीं अच्छा न लगे। यहाँ अच्छा रमणीय था। तो फिर उसने कहा, आप कैसे सभ्य महात्मा हैं, कि शंकर जी के ऊपर बैठे हैं। तो हमने कहा ऊपर न बैठें, तो कहाँ, नीचे बैठें? पानी में? फिर हमें उसे डाँटना पड़ा। हमने कहा तुम समझते नहीं–छोटे छोटे लड़का होते हैं, तो माता पिता के कन्धें में चढ़ जाते हैं। टट्टी–पेशाब कर देते हैं। तो माता–पिता क्या कभी नाराज होते हैं? अब ये हमारे बाप हैं, हमारे इष्टदेव हैं, हम इनके ऊपर न बैठें, तो क्या तेरे ऊपर बैठें? तेरे ऊपर बैठें, तो मर जाएगा। कमजोर बाबा। हमने कहा, हट उल्लू कहीं का, भाग! फिर मारे चार डण्डा, तो भाग गया–फिर तब से वह नहीं आया। तो यह भय हमारी अपनी कमजोरी है। यह हमें आनुवांशिक कमजोरी मिल गई है, कि आओ शेर हमें खालो। हम ही बुलाते हैं, उसे। गांवों में माताएं बच्चों को डराती हैं, हव्वा आया, शेर आया। तो शुरू से भय के संस्कार बन जाते हैं। जैसे शेर आ गया, तो हमारे अन्दर जो भय का संकल्प आ जाता है, कि खा लिया–खा लिया। यही हमारा संकल्प, शेर के अन्दर रिऐक्ट (प्रतिक्रिया) होकर, खाऊं–खाऊं का रूप ले लेता है। और अगर भय के बजाय यह आए कि जो आत्मा मुझमें है, वही इसमें भी है। शेर, भालू, चिड़िया, सर्प, शत्रु सब में वही है। तो हमारे समत्व के संकल्प, उसके अन्दर भी जागेंगे। और वह अपने रास्ते जाएगा, हम अपने रास्ते जाएंगे।

तो इस तरह से, हमारे ही संकल्प, उसे बुलाते हैं। यह सही बात है। अब जैसे आदमी बूढ़ा जर्जर हो गया, तो कहता है, अब भगवान उठा ले तो ठीक रहे–तो स्वयं बुलाता है न मृत्यु को–तो झट मर जाता है। भगवान किसी को नहीं मारता है।

"कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय"

वह तो गुणातीत है, निर्लेप है। इसलिए लोग भगवान पर यों ही दोष मढ़ते हैं–करने वाले खुद हैं। स्वयं अपनी इच्छा करके भोग रहा है। इसलिए इच्छाओं का दमन करिये। निरपेक्ष हो जाइए। निर्मल हो जाइए। संकल्पों का नाश करिए। तो निर्मल में कौन रहेगा? भगवान रहेगा –

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा'

और जब शंका ही शंका भरी है, ऐब ही ऐब भरा है। इच्छा भरी है। तो फिर भगवान नहीं आएगा। अगर भगवान आ जाय, तो निर्भीकता आ जायेगी। और अभी क्या है, कि एक तरफ इच्छा करते हैं, एक तरफ भजन करते जाते हैं। जितनी आमदनी करते हैं, उतना खर्च करते जाते हैं। आमदनी ज़्यादा होगी, तो वीटो बनेगा। और खर्च ज़्यादा होगा तो कैसे बनेगा? इसलिए हम कहते हैं, कि अनपेक्ष होना चाहिए। अपेक्षा रहित होना चाहिए। ऐसे ढंग से जो साधक रहते है, वे सही हो सकते हैं। निर्भीक हो सकते हैं। साधक के जो लक्षण हैं, वो उसमें आ सकते हैं। साधन की सही कोटि में अग्रसर हो सकते हैं। इसलिए सबसे बड़ी चीज़ एक ही है, कि सजातीय गुणों का समूह, हमें स्वीकार हो जाय, और उनका साम्राज्य हो जाय। जब इतना हो जाय तो बस फिर सद्गुणों को भी विदा कर दे। देखो, अज्ञान को भगाने तक, ज्ञान का काम है। ज्ञान का आलिंगन करते हैं, तो अज्ञान नहीं जाएगा। क्योंकि ये एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए ये दोनों एक ही हैं। न ज्ञान है, न अज्ञान है। ये एक ही चीज है। इसमें दो चीज़ बन जाती है। जब एक प्रसुप्त होती है, तो दूसरी खड़ी हो जाती है। दिन के सुबह 6 बजते हैं फिर धीरे–धीरे शाम के 6 बजेंगें। दिन प्रसुप्त हो गया–रात आ गई। 12 घण्टे दिन रहता है फिर रात आ जाती है, फिर दिन आ जाता है। यह कब से झगड़ा है, इनका। न रात हारे, न दिन हारे। 12 घण्टे दिन का, 12 घण्टे रात का, रोज। एक जाता है, दूसरा आता है। इसी का नाम दुनिया है। इसलिए इनका झगड़ा नहीं खतम होता। यह तो हम समझते हैं कि यह रात है, यह दिन है। लेकिन यदि रात और दिन अलग–अलग दो चीजें होतीं, तो कभी न कभी दोनों एक साथ दिखाई पड़ते। रात दिखाई पड़ती है, तो दिन नहीं दिखाई पड़ता। दिन दिखाई पड़ता है, तो रात नहीं रहती। तो ये एक चीज़ है। इसलिए एक ही दिखाई पड़ता है। एक ही चीज़ को हम दो करके देखते हैं।

"एक अन्दर दो बाहर फट गया फट गया फट गया।"

बस वही हाल है। इसलिए सबसे बड़ी बात यही है, कि हम अपने अंतःकरण को इतना पवित्र बनाएं, कि सद्गुण उसमें बरबस आते जायं। इतना पवित्र बनाएं, कि

दुर्गुण सब निकल कर भाग जायं। फिर सद्गुणों को भी विदा कर दें, और दुनिया के सर्कुलेशन से बाहर हो जायं। फिर सर्कुलेशन में नहीं आना चाहिए। और अगर अन्योन्याश्रय दोष में आ गए, तो फिर कुछ नहीं हो सकता। इसलिए भगवान की ताकत नहीं, यह सब कुछ करने की। क्योंकि ईश्वर के क्षेत्र में यह अन्योन्याश्रय है। उसमें गुण दोष दोनों रहेंगे। अनादि हैं ये। तो यह काम, दास का है। साधक का काम है यह,

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कींह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, पहिहरि वारि विकार।।

तो पहले सद्गुणों को लें और फिर उनका भी त्याग कर दें,

सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिए, देखिय सो अविवेक।।

इस तरह दोनों से छुट्टी लेना है। अगर समझ काम कर जाय तो हम अपने अंदर यह कर सकते हैं। संसार में तो, सत् असत् दोनों रहेंगे। ऋषियों, महापुरुषों के मार्ग में चलकर, हम यह कर सकते हैं। यह जनरल नहीं है, यह परसनल है। इसे कर लिया जाय तो कल्याण हो सकता है। बस यहीं से मुक्ति का मार्ग है। सद्गुरु कृपा कर दें। सत्-असत् से बाहर करदें, बस कल्याण हो जाता है। दुनिया से मतलब नहीं। इसका नाश नहीं है। पैदा होंगे-मरेंगे। इसलिए यह मुक्ति का मार्ग है। कल्याण का मार्ग है। जिस गुरु के लाल के भाग्यशाली के, हृदय में नाम-रूप के प्रति प्रेम पैदा हो जाय, वह इसे प्राप्त कर सकते हैं। तभी अभय आ सकता है। निर्भय हो सकता है। मुक्त पुरुष ही निर्भय होता है। मुक्तस्य किं लक्षणं, निर्भयं। तो अभय बहुत बड़ी डिग्री है, साधारण नहीं है यह।

दो रूप हैं कर्म के। एक माया क्षेत्र के कर्म हैं, दूसरे ईश्वरीय कर्म। संसारी कर्मो का प्रतीक है कंस। ईश्वरीय कर्मों का प्रतीक है कृष्ण। कृष्ण और कंस ये दो शब्द हमेशा एक दूसरे के अपोजिट हैं। देव, दानव, सुर असुर, राम रावण, कृष्ण कंस दुर्गुण सद्गुण, हँसी रुलाई, दिन और रात, दुख और सुख, गरीबी और अमीरी ये एक दूसरे के अपोजिट हैं। इनका झगड़ा कभी खत्म नहीं होता। यह झगड़ा अनादि काल से है-यह खतम नहीं होगा। इसलिये कंस और कृष्ण का भी झगड़ा है। कंस कर्म है। किसी साधक की ऐसी ही रिसर्च है, उसकी खोज है। उसकी अपनी थीसिस है। लेकिन कंस बहुत खतरनाक है। उसने मार-मार भजन करने वालों को कहा, क्या बैठे बैठे करते हो? कंस महा बेईमान दुष्ट। हम कहते हैं, कंस कर्म को। कर्म से

कोई, बच पाता नहीं। बड़ी गहन गति है, कर्म की। कर्म किसी से पराजित नहीं होता। क्योंकि जब कोई उसे मारने जायेगा, तो हरकत करेगा। जब करेगा तो कर्म बनेगा–वह और बढ़ गया, बलवान हो गया। उसे ताकत मिल गई। करने वाले की आधी ताकत उसके पास चली गई–इसलिए उसे कोई पराजित नहीं कर पाता। गहनों कर्मणा गतिः। कर्म की गति बड़ी गहन है। इसलिये बाली से बलवान कोई नहीं था। राम को परेशान कर दिया। रावण को छः महीने कांख में दबाये रहा। रामायण में बाली, कर्म है। इस तरह कर्म बहुत बलवान होता है। कंस कर्म है। और जब मन रूपी मथुरा में डेरा धर लेता है। तो फिर ब्रज बरसाना आदि अन्तःकरण रूपी चारों गांवों में, कर्म ही कर्म छा जाता है। उससे कोई बच नहीं पा सकता। उसके मारे साधक को शान्ति नहीं रहती। तब इस धड धरती में अकुलाहट आती है। तब फिर भगवान याद आते हैं। इन्द्रियों में, इन्द्रियों के अधिदेवों में, अध्यात्मों में–14 अधिभूत, 14 अधिदैव, 14 अध्यात्म सब में लगन लग जाती है–हे तारण् हार आओ, इस आततायी को खतम करो–इस तरह भजन में लगन लग गयी। तो ध्यान जो है वह देवकी है। और जो सब में बसा हुआ है, वह वसुदेव है। शरीर कारागार है। तब कंस के अपोजिट, जो सजातीय कर्तव्य रूपी कृष्ण है, वह पैदा हो जाता है। और फिर जब पैदा हुए, काया रूपी कारागृह में। तो सीधा जानकारी यमुना को पार कर अर्थात् जानकारी ग्रहण करके, नियम रूपी नन्द और भक्ति रूपी यशोदा के यहां ले जाते हैं। बस यही तरीका है। भगवान की भक्ति करे। नियम से साधना, भजन करें, यह नन्द बाबा हैं, यशुमति भक्ति है। और वहां है क्या? गाय और गोपी के अलावा तो कुछ है नहीं। यह सब कहानी साधक के अन्दर की है,उसे समझो। जैसे कहते हैं,

"नौ लख गैयां नंदबबा के, नित नव माखन होय।"

नौ लाख गाय थी नंद बाबा के। नौ लाख गाय वहां चरेगी कहां? नौ लाख गायें अगर हों तो मथुरा, वृन्दावन, कावॉ, आगरा करीब 80–90 किमी. क्षेत्र में खड़ी हो सकती हैं। कुछ रह ही न जायेगा। न खेती न चारा। लेकिन अकेले नंद बाबा के नौ लाख गाय थीं, ऐसा लिखा है। नौ लाख गाय का मतलब ये इन्द्रियाँ हैं। और सब कामधेनु थीं। तो जब साधक की इन्द्रियाँ बस में हो जाती हैं (नियम बद्ध साधन से), तो जो इच्छा होती है वही देती हैं। कामधेनु बन जाती हैं उसकी इन्द्रियाँ। जब साधक जिस आदमी को ध्यान में देखकर बुलाये, और वह भागा चला जाये। इतनी बड़ी इनर्जी आ जाये, तब काम चलता है।

वशिष्ठ मुनि के पास ऐसी ही कामधेनु थी। विश्वामित्र शिकार के लिए गये थे, पचास हजार पलटनको लेकर। ये राजा थे। गये, तो महात्मा की कुटिया दिखायी पड़ी। तो कहा किसका आश्रम है–तो बताया वशिष्ठ मुनि का आश्रम है। अच्छा तो चलो दर्शन कर लेते हैं। तो वशिष्ठ जी ने कहा, कि राजन आज यहीं रुक जाइये। तो विश्वामित्र ने कहा–यहां आप के पास क्या है? मेरे पास बहुत पलटन है। तो वशिष्ठ जी बोले, है तो कुछ नहीं, लेकिन हो सकता है, कुछ हो जाए। तो राजा का नशा तो इनको था ही। बोले अच्छा चलो रुक जायं। देखें क्या करते हैं ? तो जो कामधेनु थी बशिष्ठ के पास, उसके द्वारा सब व्यवस्था कर दी गयी। ऐसा व्यंजन दिया खाने को, कि उनके बाप, दादा ने भी न खाया था। सारे लोग, नौकर–चाकर सब खाये–पिये, और सब स्तब्ध रह गये कि ऐसी भोजन सामग्री तो हम कभी देखे नहीं, ज़िंदगी में। ये कहां से ले आये, लंगोटी बाबा। कहां से यह सब इन्होंने इंतजाम किया। तो सबेरे पूछा, कि यह सब आपने कैसे किया–क्या है आप के पास? ऐसी हमारे पास भी ताकत नहीं है, राजा होते हुये भी। कि इतनी मेहमानी करा दें, इतनी जल्दी और ऐसे सुन्दर ढंग से। तो बोले, राजन् ऐसा कुछ नहीं, यह सब भगवान की कृपा है। और हमारे पास क्या है–हम लंगोटी वाले बाबा हैं। भगवान के पास बड़ी ताकत होती है– वही सब करने वाले हैं। तो बोले, हम सुनते हैं, कि आप के पास एक गाय है, जो सब इच्छा भोजन दे देती है। सब समान दे देती है। रिद्धि–सिद्धि ले आती है। वह गाय कहां है? तो उन्होंने बता दिया, कि यह है गाय। बोले अच्छा, यह गाय हम ले जायेंगे। ऋषि ने कहा, यह गाय तो ले जाने वाली गाय है नहीं। यह तो स्थायित्व है, क्षमता है। यह तो किसी के हृदय में जमी हुई रहती है। यह कैसे जा सकती है? तो बोले, नहीं, यह तो हम ले जायेंगे। सिपाहियों से कहा, ए खोलो! ले चलो। जैसे गये उसके पास, तो फों कर दिया, तो एक किलोमीटर दूर गिरे, जो खोलने गये थे। हारकर थक गये। वह जाने वाली गाय तो थी नहीं। वह तो जहाँ पैदा होती है, उसी जगह पर रहने वाली है। उसके यहां कैसे जायेगी, जिसके उस स्तर के संस्कार नहीं हैं। वह तो योग–क्रिया से जाग्रत हुई है। उसके यहां योग–क्रिया, है ही नहीं। फिर यह झगड़ा चला। बड़ा भारी विवाद चला। अनेक कवियों ने, अनेक लोगों ने, वशिष्ठ और विश्वामित्र के विवाद को लिखा है। यह भी कहते हैं, कि वशिष्ठ श्रेष्ठ थे। वशिष्ठ कहते हैं ज्ञान को, जो सबसे श्रेष्ठ होता है। विश्वास का दृढ़ होना–विश्वामित्र है। इस तरह ये दो तत्व हैं। अध्यात्म में ऐसे लेते हैं। दोनों में कौन श्रेष्ठ है यह झगड़ा है। ज्ञान कहता है कि मैं श्रेष्ठ हूँ। क्योकि,

ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना।

ज्ञान होने पर ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। विश्वास कहता है कि बिना मेरे कोई साधन फली भूत नहीं होता है।

'कउनिउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा।'

और,

'बिनु विश्वास भगति नहि, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।'

बिना विश्वास के भगवान द्रवित नहीं होते। जब तक यह विश्वास नहीं आ जाता, तब तक यह तर्कना रूपी ताड़का मारी नहीं जा सकती। मन रूपी मारीच पर इसके बिना कंट्रोल नहीं होगा। फिर यह मन का स्वभाव रूपी सुबाहु मारा नहीं जा सकता। फिर ईश्वर को जानने की प्रक्रिया ठप पड़जायेगी। ईश्वर को जान नहीं पायेगा तो साधक कमजोर पड़ जायेगा। इसलिये विश्वामित्र भी कमजोर नहीं है। उधर ज्ञान के बिना कुछ हो नहीं सकता। इसलिये वशिष्ठ भी कमजोर नहीं है। तो इन दोनों का झगड़ा कब निपटेगा। जब साधना समाप्त हो जायेगी। विश्वामित्र बड़े बलवान थे। बड़े अस्त्र-शस्त्र, विद्याएं थीं उनके पास। और बहुत बड़े तपस्वी थे। उनके बराबर तपस्या, किसी ने किया नहीं। जबरदस्ती ब्राह्मण बन गये। जब वह वशिष्ठ के पास गये, तो उन्होंने कहा आओ राजर्षि। तो बहुत नाराज हुये कि मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहा। तो सोते समय वशिष्ठ के लड़कों का सिर काट डाला। तो वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती ने कहा, कि ब्रह्मर्षि कह दो, नहीं तो तुम्हें भी मार डालेगा, मुझे भी मार डालेगा। यह बहुत बलवान है। लेकिन वशिष्ठ ने कहा, कि चाहे मार डाले, लेकिन मैं कह नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि विश्वामित्र बहुत बड़ा तपस्वी है, लेकिन ब्रह्मर्षि कहने का टाइम जब आयेगा तभी कहूंगा। तो एक रोज विश्वामित्र छिपकर उन दोनों की बात सुन रहे थे। जब अरुंधती ने फिर कहा कि उन्हें ब्रह्मर्षि कह दो तो वशिष्ठ ने कहा विश्वामित्र तो ब्रह्मर्षि से बड़ा है लेकिन वह फरसा बांध कर चलता है, तलवार बांधता है, शस्त्र लेकर चलता है, तो मैं कैसे उसे ब्रह्मर्षि कहूँ? तो सुन लिया विश्वामित्र ने। फिर त्याग कर सब हथियार गये। वशिष्ठ ने कहा, आओ, ब्रह्मर्षि आओ। तो एक साधक के हृदय में जब दोनों डिग्रियाँ पूरी होती हैं, तो फिर न ज्ञान रह गया, न विश्वास रह गया। न चूना रह गया न हल्दी रह गयी, एक तीसरी चीज़ तैयार हो जाती है।

जब हृदय में एक संविधान बनकर तैयार होता है-उस ग्रंथि को, ग्रंथि समूह को अन्तःकरण कहते हैं। जो अन्दर के विभागों को क्रियान्वयन करता है। जो अन्दर की क्रियाओं का संचालन करता है। जो अन्तःकरण में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब है। वह

चार भागों में बांटा जाता है। अहंकार, बुद्धि, मन और चित्त, चार भागों में बांट दिया जाता है। तो उनका काम क्या है? नाम एक ही है। अन्तःकरण समूह, संसार को धारण करता है। और चार तरीके से क्रिया करता है। मन संकल्प करता है। बुद्धि निश्चय करती है, चित्त चिन्तवन करता है। और अहं ईगो करता है। अहंकार अपना बोध कराता है। तो एक ही अन्तःकरण चार भागों में बंट जाता है। महापुरुषों ने, गुरु लोगों ने, अपनी सुविधा के लिए, इसके चार भाग कर लिये हैं। एक ही आदमी जो बड़ा मोटा तगड़ा होगा, तो वह पिटाया नहीं पिटेगा। हराया नहीं हारेगा। तो इसके चार भाग बना दें, तो यह पिट जायेगा। माया जो अनिर्वचनीय है, उसको समझना-कहना मुश्किल है। उससे पार पाना कठिन है। माया भगवान को भी आच्छादित किए हुए है।

'मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म। 'वह माया है भी, नहीं भी है। सत्य भी है असत्य भी है। सही भी है, गलत भी है। और सही गलत के परे भी है। ऐसी जो माया है- अनिर्वचनीय है। तो इसको कंट्रोल कैसे किया जाय? जब हम इस पर कंट्रोल पा जायं, इससे पार पा जायं तो फिर हृदय में भगवान आ जायगा।

'प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।'

अब इसमें यह देखना है कि कैसे हम भगवान को प्राप्त करें? जितनी कल्पनाएं हैं, जितना अन्तःकरण है। मन है, बुद्धि है, चित्त है, अहंकार है, इन्हें रोक दिया जाय और भगवान जैसे हैं, वैसे हम बन जायें। निर्मल, आकाशवत्। उसमें कुछ नहीं है। न खाना है, न पीना है, न सोना है, न जागनाहै, न अच्छा है, न बुरा है। वह एक रस है, व्यापक है, शुद्ध है, बुद्ध है, अजन्मा है अरूप है, अलख है, अविनाशी है- ऐसा स्वरूप है। और यही स्वरूप सबका है। यह ऐसा सरूप नहीं है, जो अभी है नाम रूप है। यह तो हमने उस निर्मल स्वरूप को छोड़कर, कल्पनाओं का रूप दे दिया है। फिर हमने चिंतवनों को दे दिया। फिर हमें इस चीज़ की ज़रूरत है, यह ज़रूरत है- बस इसी में फंस गए। तो भजन का मतलब यही होता है कि हम अपनी कल्पनाओं का दमन करें। हम अपनी इच्छाओं का दमन करें-इच्छाएं न हों। ईश्वर में, मन की गति को रोकने का उपाय करें। कहीं यह मन न रुके। रुके, तो अपने इष्टदेव में रुके। उसे हम रोकते रोकते जब खड़ा कर देंगे। तो उसमें चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जायगा। और फिर यह तोता जैसे बाली तोड़ कर लटक गया था-वैसे ही हम परमात्मा के स्वरूप को पकड़ कर उसी में झूम जायं। ऐसी स्थिति जब आ जाय। हम उल्टा हो जायं। हम अपनी क्रिया को संसार से उल्टा कर दें। तो फिर बच

लिये। परमात्मा हमारे पास रह जायगा, और यह जो विकार है, यह माया, हट जायगी। उल्टा उल्टा, होना है–

'उल्टा चलै सो औलिया, सीधा सब संसार।'

सब लोग सीधा चलते हैं। हम कहते हैं, कि सब लोग सुख–सुख चिल्लाते हैं। कोई एक आदमी नहीं है, जो दुख की मांग करे। क्यों नहीं उल्टा हो जाते?

गीता कहती है–

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।"

जिसमें भगवान का भक्त जागता है, उसमें दुनिया सब सोती है। और भगवान का भक्त जिसमें सोता है, उसमें दुनिया जागती है। इस तरह से उल्टा जब हो जाय तब फिर ठिकाना लग जाय। दुनिया में इच्छा से फँसता है जीव । अनपेक्ष हो जाय तो यह माया छूट जाती है। बन्दर ने लडडू की इच्छा किया, तभी तो वह फंस गया। इच्छाओं का दमन तो है ही नहीं। इच्छा तो है ही, कि हमें लडुवा मिलें। इसको हटा सकता नहीं, अंतःकरण से। इसे जब हटा देगा, तब लडुवा छूटेगा। नहीं हटा पाया तो बस फंस गया। अगर उसे ज्ञान हो जाता, कि लडुवा के कारण फंसे हैं, तो वह सोचता कि लडुवा जाय भाड़ में, हम भाग तो जायेंगे। तो यह वह जानता ही नहीं था। यह जानना ही तो ज्ञान है। बस इतने में मामला अटका है। है कुछ भी नहीं। हम शिष्य हैं, और गुरु वशिष्ठ है–वक्ता है। ज्ञान है। और यह आदान प्रदान योगवाशिष्ठ है। योग की पुस्तकें सबसे श्रेष्ठ मानी जाती हैं। वशिष्ठ माने श्रेष्ठ। तो इसमें राम को साधक बनाया गया है, और ज्ञान को गुरु। जो आत्मा में रुचि है, परमात्मा को प्राप्त करने की, वह राम है। और ज्ञान जो प्राप्त हो रहा है, उसे ईश्वर की तरफ से, गुरु की तरफ से, वह ज्ञान वशिष्ठ है। दोनों के बीच में डिस्कशन (विचार–विमर्श) है। इस प्रकार हर साधक अपने अंतःकरण में एडजस्टिंग करता है, तो वह चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। और अगर भगवान का भजन करना चाहते हो, भगवान की नीति पर चलना चाहते हो, भगवान के ज्ञान को लेना चाहते हो, तो फिर बिना किये नहीं आएगा।

इस माया को कंट्रोल कैसे किया जाय? उसके लिए लोगों ने इसे दो भागों में बांट दिया–विद्या और अविद्या। फिर कहा नहीं, दो भागों में अभी कंट्रोल में दिक्कत आयेगी। तो फिर तीन भाग कर दिये। सत्‌रज और तम। तीन भागों के बजाय पांच भागों में बांट दिया जाय तो–छिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पांच भाग कर दिये।

फिर सोचे 10 भाग किये जाय तो–दस इंद्रियों में बांट दिये। तो ऐसे एक ही चीज़ को हजारों भागों में बांट दिया जाए। इससे धीरे–धीरे करके कंट्रोल कर लिया जायगा।

चित्त को हम चिंतवन से तभी अलग कर सकते हैं, जब हम मूल प्रकृति को अच्छी तरह से समझ जायं, कि यह कहां से संचालित होती है। इसके पाये कितने हैं। इसके एजेंट कौन कौन हैं–इसका प्रचार प्रसार कहां कहां से होता है। यह आनंदित क्यों होने लगती है? यह अट्रैक्ट (आकर्षित) क्यों करती है, आदमी को? इसके अट्रेक्शन्स (आकर्षण) क्या हैं। इसके गुण क्या हैं– अवगुण क्या हैं? इसको बाई नम्बर (क्रमवार), समझना पड़ेगा। इसे जब विधिपूर्वक समझ लेंगे, तब फिर इससे बचने का उपाय होगा। इसलिये ऋषियों ने, महापुरुषों ने, मायावाद में दर्शन में, इसे विभिन्न रूपों में खंडित किया। और एक एक चीज़ के दो–दो, चार–चार, दस–दस टुकड़े बनाये हैं। इसलिये बनाये कि जितने छोटे टुकडे हो जायेंगे उतनी ही सरलता से, बिना मेहनत के, हम इन पर हावी होते चले जायेंगे। और अगर संघ बना रहा तो 'संघे शक्तिः कलियुगे।' कलियुग माने माया का क्षेत्र। अगर प्रकृति एक ही रही, तो उसमें इतनी क्षमता आ जायेगी, इतनी ग्रेविटी आ जायेगी, इतना गुरुत्वाकर्षण आ जायेगा, कि उस पर कंट्रोल नहीं हो सकता। इसलिये यह एक तरीका है। यह तरीका साधकों को लाभान्वित करता हैं। सबसे सरल तरीका है, कि हमारे महापुरुषों ने, हमारे पूर्वजों ने–जो हमसे पहले आये हैं, और जिन्होंने इस रास्ते से निकलना शुरू किया है, इस अनुसंधान को पूरा किया है। और ईश्वर के रास्ते में सफलता पाई है, उनके बताये हुये रास्ते में चलने में, बड़ी भारी सुविधा होगी। आराम मिलेगा। और नाना प्रकार की ऐसी गोप्य युक्तियां मिलेंगी, जिनके द्वारा हम बड़ी से बड़ी कठिन घाटियों को चढ़ सकते हैं। आगे बढ़ सकते हैं।

चित्त भी अन्तःकरण का एक शक्तिशाली विभाग है। और महात्माओं ने इस पर कंट्रोल करने का उपाय–योग, का अनुसरण किया– 'अथ योगानुशासनम्।' योग पर अनुशासन करने की जो विधि है, उसमें सबसे बड़ा महत्व चित्त को दिया गया है।

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।'

चित्त की वृत्तियों को सर्वथा रोकना, निरोध करना यही योग की पराकाष्ठा है। योग का यह ध्येय है। हम कहेंगे कि चित्त की वृत्तियों का जब निरोध हो जायेगा, तो जीवन खतम हो जायगा। चित्त अगर चिंतवन नहीं करेगा, मन संकल्प नहीं करेगा तो मेमोरी (स्मृति) खतम हो जायेगी। मेमोरी खतम हो जायगी, तो आदमी क्या करेगा–कैसा रहेगा? तो ऐसा नहीं है। चित्त–वृत्ति के निरोध का मतलब, चिंतवन

समाप्त कर देना नहीं है। इसका मतलब यह है, कि चित्त चिंतवन करे, लेकिन हम जो कहें वह चिंतवन करे। निरोध का मतलब, हमारे अधीन रहकर काम करे। मन जिसे स्वीकार करे, वह न चिंतवन करे। चित्त जिसे स्वीकार करे, वह चिंतवन न करे। गाइड जो कहे, इष्टदेव जो कहे, वह चित्त चिंतवन करे। वह मन संकल्प करे। वह बुद्धि निश्चय करे। वह अहं, अहंकार करे। तब ठीक है। तब फिर इसका ट्रांसफार्म हो सकता है। मन गरुड़ बन सकता है।

बुद्धि में ब्रह्मा, चेतन का प्रतिविम्ब है। अहं में रुद्र चेतन का प्रतिबिम्ब, मन में चन्द्रमा चेतन काप्रतिबिम्ब और चित्त में वासुदेव चेतन का प्रतिबिम्ब, और इन्द्रियों के दस देवता, ये सब अधिदैव हैं। चार अंतःकरण पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां। ये 14 अध्यात्म, इनके 14 देवता अधिदैव और इनके 14 विषय अधिभूत। ये 42 तत्व जाग्रत अवस्था में रहते हैं। इनसे हम सभी क्रियायें करते हैं- खाते, पीते, भजन करते भलाई करते, बुराई करते, बेइमानी करते और लडते-झगड़ते। जो भी करते, सब जाग्रत अवस्था में करते हैं-42 तत्व की जाग्रत अवस्था है। और जब हम सोते हैं, और स्वप्न देखते हैं। वह स्वप्न अवस्था है। यह स्वप्न अवस्था क्या है-जाग्रत अवस्था का रिऐक्शन (प्रतिक्रिया) है, जो स्वप्न में हम चित्र देखते हैं। कभी सही आते हैं, कभी गलत आते हैं। और गाढ़ी नींद में सो जाते हैं-स्वप्न भी नहीं आते हैं-अथवा जब ध्यान में हम शून्य हो जाते हैं-वह सुषुप्ति अवस्था है। और जब हम आकाशवत हो गये। वैचारिक ढंग से चलते चलो हमारे साथ। हम जाग रहे हैं, यह जाग्रत और सो गये स्वप्न देख रहे हैं-यह स्वप्न अवस्था। फिर गहरी नींद में चले गये-आकाशवत हो गये वह सुषुप्ति। अब जाग गए, जाग्रत हो गई। इस जाग्रत में भी उस सुषुप्ति का ही आभास बना रहे। हम आकाशवत हैं, न चलते हैं, न फिरते हैं। न खाते हैं, न पीते हैं-हम सुषुप्ति में हैं-ध्यान का यही सही रूप है। ध्यान में नींद सी आ जाय। ध्यान लगते लगते नींद का रूप बन जाय। यह ध्यान ही है। ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एक हो जायं। शून्य हो जाय, ऐसी कंडीशन (स्थिति) आ जाय और उसमें हमें कुछ पता न रह जाय, जैसे गहरी नींद में सो जाते हैं, इसको सुषुप्ति कहते हैं। और जिसमें चित्र आते हैं, रील बनती रहती है, वह स्वप्न अवस्था है। जाग्रत अवस्था का कुछ अंश रहता है। जाग्रत की सहायक स्वप्न अवस्था। जाग्रत और स्वप्न इन दोनों से परे सुषुप्ति है। गहरी नींद। न चित्र दिखाई पड़े, न स्वप्न दिखाई पड़े। न कोई मतलब। जैसे गर्मी के मौसम में, कोई ठंडी जगह मिल जाय, कुछ खाने को मिल जाय, ठंडा पानी पीने को मिल जाय, और सो जाय। फिर उसे कोई जगाए तो कैसा लगता है? बुरा लगता है। कहेगा बड़ा आनंद मिल

रहा था, सो रहा था इसने मुझे जगा दिया। फिर वह सोना पसंद करेगा। ऐसी गहरी नींद, जिसमें कोई चित्रण नहीं होता, जिसमें कोई चितवन नहीं होता–ऐसी गहरी नींद, उसे सुषुप्ति कहते हैं। जिसमें शून्य स्तम्भ आकाशवत् रह जाता है– शरीर का भान नहीं रहता। अगर ऐसा शून्यवत् ध्यान आता है, तो वह ध्यान ठीक है। अगर उसमें कोई चित्र बनेगा तो उसका कोई कारण होगा। समाज के विषय में कोई चित्र आ सकता है। साधन के विषय में कोई चित्रण हो सकता है। कोई फ्यूचर (भविष्य) की बात आ सकती है। आगे वह घट जायगी–अक्सर ऐसा होता है। ध्येय ध्याता और ध्यान इन तीनों में एकतानता।

"तत् प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"

जैसे तैल धारा हो। तेल को गिराओ तो एक लाइन बन जाती है। पानी ऐसे ऐसे (थोडा हिलते हुए) गिरता है। लेकिन तेल–धारा की उपमा दी गई है। तो ऐसा ध्यान अगर लग जाय, और उसमें अगर सुषुप्ति की अवस्था में हम प्रवेश कर जायें–तो वह ध्यान ठीक है। उसमें कोई हर्ज नहीं। सुषुप्ति भी तो ध्यान ही है। यह संसार ही तो जाग्रत अवस्था है। यह रात ही स्वप्न अवस्था है। यह ध्यान ही तो सुषुप्ति है। तो सुषुप्ति कैसे आये हमारे पास? सुषुप्ति में कुछ भी भान नहीं होता है। यह अवस्था जागते में भी रहे। मान लो ध्यान कर रहे हैं, सुषुप्ति में हैं, और जाग गए। ध्यान टूट गया, सुषुप्ति हट गई। जो यहजाग्रत आ गई, अब इसके संस्कार हममें न पड़ें और जो सुषुप्ति का आनंद हमें मिला है–वही नशा हमें चढ़ा रहे, जागने पर भी। ध्यान की अच्छी दशा यह कही जायगी।

ध्यान की शून्य अवस्था, हर समय बनी रहे। जब हम जाग्रत में सुषुप्ति की अनुभूति पाए रहें। जाग्रत में, जाग्रत न रहें। तो सही ध्यान माना जायेगा–यह हम प्रैक्टिकल बात बता रहे हैं। और जब जाग्रत में जाग्रत अवस्था नहीं रहेगी, सुषुप्ति ही रहेगी– तो फिर जब हम स्वप्न की अवस्था में जायेंगे तो वहाँ भी सुषुप्ति ही रहेगी–स्वप्न नहीं रहेगा। सुषुप्ति उसमें भी चली जायेगी। क्योंकि जाग्रत को हमने ज्ञान की गर्मी से गलाकर, सुषुप्ति रूपी पानी में बदल डाला है। तो अब स्वप्न में भी रहेगी। इस तरह से जब इन तीनों अवस्थाओं में एकरस सुषुप्ति की स्थिति आ जाय, तो साधक के चित्त में, अन्वय–व्यतिरेक की युक्ति से चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। और चित्त पकड़ में आ जायेगा। फिर जो उसे कहा जायेगा, वही करेगा। इस प्रकार जब तीनों अवस्थाओं में सुषुप्ति आ जाए, तो उसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब तुर्या का है। तुर्या (तुरीयअवस्था) में पहुँचने पर संसार छूट जाता है। संसार

में रहते हुये, संसार का त्याग हो जाता है । शरीर में रहते हुये, शरीर से मतलब नहीं रह जाता। और जब उस अवस्था में चेतन का प्रतिबिम्ब आ गया–अन्दर से कम्युनीकेशन हो जाए तो फिर एक डिग्री और बढ़ जाती है–तुर्यातीत। थोड़ा और अन्दर घुस जाये, तो फिर अतीतातीत। फिर ऐसे महात्मा किसी की पकड में नहीं आते। फिर वीटो (विशेषाधिकार) आ जाता है। उसको ताकत मिल जाती है। और जब तक यह स्थिति नहीं आती, तब तक रोना चिल्लाहट भगवान से प्रार्थना, भय रहेगा, डर लगेगा, गिड़गिड़ाता रहेगा, पतित के लक्षण रहेंगे, परवसता रहेगी, मन कंट्रोल में नहीं रहेगा। ऐसी गड़बड़ियां रहेंगी। और जब अन्तःकरण पर कंट्रोल हो जाता है, तो फिर वह गम्भीर हो जाता है। ताकत आ जाती है। उसे डर नहीं लगता–मुक्तस्य किं लक्षणं निर्भयं। तो इस तरीके से जब ऐसी ताकत आ जाती है, तो वह राइज हो जाता है। इसलिये–

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'

योग चित्त की वृत्तियों के निरोध को कहते हैं। और चित्त के निरोध का मतलब ऐसा नहीं है कि चित्त खतम हो जाता है। या अन्तःकरण खतम हो जाता है। तब तो सब काम ही रुक जायेगा। डेड (मृत) हो जायेगा। समाधि का मतलब ऐसा नहीं, कि सांस रुक जाती है। समाधि का मतलब है–सम के आदी। समत्व की स्थिति। एक ऐसी अवस्था है अन्तःकरण की, कि जब सुषुप्ति के बाद तुर्या आती है, तो समत्व में व्यापक रूप ले लेती है। बार–बार इस अवस्था को लाने का प्रयत्न करना चाहिये। यह हर समय बनी रहे, नशा हो जाय। उसे पाये बिना रहा न जाय। चित्त में आ जाय। अन्तःकरण में आ जाय। छूटने न पाये। मन में बना रहे और यह नशा उतरने न पाये। उसी चितचोर में चित खो जाय,

"मरे हजारों लोग चाह चितचोर तेरी करते करते।
पर न मिला दीदार कूच कर गये ध्यान धरते धरते।।
पंडित कोबिद कवी रहे अज्ञान, शास्त्र पढ़ते पढ़ते।
वेद पुरान कुरान हुये हैरान, वयान करते करते।
कोई कहे हम पक्के हिन्दू, शिखा सूत्र धारण करते।
कोई कहे हम मुसलमान हैं, दाढ़ी में अकड़े फिरते।
आपस में सब लड़कर मर गए, राग द्वैष करते करते।
तेरे इश्क में हैरान हुये हम कई कदम धरते धरते।

सतगुरु की तब कृपा हुई जब बहुत काल साधन करते।
लखा दिया झट एक ही पल में जिसे चार वेद वर्णन करते।''

यह प्रक्रिया है, और यह गैल है। साधक साधना नहीं कर सकता। साधक को साधना गुरु कराता है। जैसे कुम्हार हण्डी बनाता है, तो ऊपर से लकड़ी ठोकता है और भीतर हाथ लगाए रहता है। अगर हाथ न लगाए तो क्या हंडी बनेगी? नहीं बनेगी। टूट जायेगी। इसलिए उसमें बहुत चालाकी है। साधना करना, और बताना या पुस्तक में लिखना भिन्न हो जाता है। जो साधन में लग जाय, तो दूसरा रूप बन जाय। जब उसी को लिपिबद्ध किया जाता है, तो उसका तरीका बदल जाता है। अनुभव काल में इसका रूप बदल जाता है। यह ऐसा है ही नहीं संसार। अनुभवकाल में जो संसार दिखाई पड़ता है, उसका रूप दूसरा होता है। इसलिए यह सृष्टि है ही नहीं। यह सब आकाशवत् है। यह कुछ है ही नहीं, जैसा दिखाई पड़ता है। है तो बस एक अमृत तत्व है आत्मा – अनंत आकशवत एकरस परिपूर्ण।

यह पहुँच है। यह दर्शन है। यह निष्कर्ष है। यह इन्ड (अंत) है। जब राम रावण का युद्ध समाप्त हुआ, तो राम ने इन्द्र से कहा कि तुम अमृत बरसा दो। तो अमृत बरसाया, लेकिन, 'जिये भालु कपि नहीं रजनीचर। भालू और बन्दर तो जिन्दा है, वह जिन्दा हो गए, राक्षस नहीं जिये। अमृत का यही गुण है कि जो जिन्दा हैं, वह जिन्दा होगा, और जो मरा है, वह मर जायगा। जो आत्मा अजर–अमर है,वह रहेगी। और संसार जो असत्य है,मरा है वह मरेगा। असुर जो विजातीय हैं। संसार का भोग करना चाहते हैं। खाना चाहते हैं। महल चाहते हैं। देवता और महात्मा जो सजातीय हैं, वे ईश्वर को चाहते हैं। माया को नहीं चाहते। इसलिए, जो अजर अमर ईश्वर को चाहते हैं, वे जिन्दे हुए, और जो मृत पदार्थों को चाहते हैं, वे मृत रहे। नहीं जिये राक्षस। अमृत का यही गुण है। वे मर करके मर (माया) को प्राप्त हुये। और वे (बन्दर, भालू) जिन्दे होकर परमात्मा को प्राप्त हुए। इसलिए वह अमृत मिले, तब ठीक है। यह अमृत चित्त के निरोध से मिलेगा। सद्गुरु की कृपा से मिलेगा।

तो अगर बाहर बाहर दौडते रहोगे,ऊपर ऊपर तैरते रहोगे, अवगाहन नहीं करोगे, मानस में नहीं उतरोगे तो कुछ मतलब हल नहीं होगा। इसमें समझने का प्रयास करो। अगर एक छोटा सा पत्थर अन्दर ले ले तो आदमी मर जायगा। एक लडकी और दो लडके बीस पचीस साल के घर बनाकर अन्दर कैसे रहेगे? अब देखो जो भी ऋषि मुनि महात्मा राम सीता और लक्ष्मण को मिले वनवास के दौरान, सब यही बोले कि भगवान लखन जानकी सहित हमारे हृदय में बास करो। तो अकल काम

नहीं करती आदमी की, कि इस तरह शरीर धारी भगवान कैसे बास करेगा हृदय में। कहते हैं शरीर धारी हैं। ऐसा मतलब नहीं है मतलब ऐसा है कि शरीरों में आत्मारूप में बैठा है भगवान।

तो भाई भगवान कोई विचित्र चीज है। उसका कोई रूप नही है और सब रूपो में समाया है। वह इतना बारीक है कि समझते समझते समझ से हट जाता है। न इति न इति वेद कहता है। बडे बडे अनुभवी उसको समझ नहीं पाते हैं। उसकी एक किरण आ जाय यह सब चाहते हैं। और यह पर्सनल विषय है। एक व्यक्ति का, जो उसके लिए रुचि लाए और पुरूषार्थ करे। ऐसा जरूरी नहीं है कि सब लोग कर लेंगे। तुमको साधना मिली तो तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे करने से सबका कल्याण नहीं हो जायगा। इसलिए वह व्यक्ति जो इस पर चले, उसके लिए है यह रामायण। उसके लिए कवियों ने, महापुरुषों ने यह गाथा गाई है। लेकिन सब सुनने के लिए टूटे पड़े हैं। श्रोता समाज इतना बढ़ा हुआ है, करता कोई है नहीं। समझता ही नहीं, मानस में अवगाहन तो होता नहीं, क्योकि यह आध्यात्मिक विषय कठिन है समझने में। निन्यानबे प्रतिशत से ज्यादा लोग मानस बोध कर नहीं पाते। इसकी गहराई में जा नहीं पाते। क्योंकि,

यहि सर आवत अति कठिनाई।

कठिनाइयाँ तो बहुत हैं लेकिन मूल कठिनाई समझ वाली है। इसलिए गोस्वामी जी ने कहा कि,

जो नहाइ चह यहि सर भाई।
सो सतसंग करहु मन लाई।।

अब सतसंग कहां मिले, यह तो दुर्लभ चीज है।

सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड मरि एकउ बारा।

तो प्रयत्न करना पड़ेगा, रुचि लाना पड़ेगा मन में और समझ में आ जाय तो अभी इसी क्षण से लगना पड़ेगा इसमें।

देखिए जब पहले नहीं मिले थे राम, तो विभीषण जो भगवान का रूप है जीव , उसकी क्या हालत थी? रावण कुभकर्ण ने उसको एक मकान दे दिया और उसी कटघरे में रख दिया था। जब हनुमान गये लंका और विभीषण से मिले तो उसने अपनी हालत बताया कि,

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन महं जीभ बिचारी।।

इसी का नाम है परवसता, जीव की माया आधीनता। देखो विभीषण अच्छाई को लिए था, नीति बताता था, भजन करता था लंका में रहते हुए। इसी तरह से यह जीवात्मा शरीर में रहते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह से परवस है

जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण वसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।

वह है ईश्वर का रूप लेकिन परवस है। मोह के अधीन है। जो रावण कहता है उसे करना पडता है और जब नीति बताता है दरबार में तो लात घूसा से मरम्मत होती है। यही कंडीशन हर आदमी की है। इससे बचने का उपाय करें। बचने के लिए यही घर है–यह मानव तन। इसी में गुंजाइस है। यह अभी जो लंका बनी है, लंका निसिचर निकर निवासा बनी है, तो इन राक्षसो के बीच रहते हुए जब यह जीव रूपी विभीषण राम राम चिल्लाने लगा, नाम जपतेजपते जब ध्यान करने लगा और ध्यान करते करतेजब मन सहित दसो इन्द्रियों में ईश्वर छा गया तो फिर यही शरीर लंका से अवध बन जाता है। फिर भक्ति कौशल्या आ जाती है। मन में चेतन का प्रतिबिम्ब यह दशरथ आ जाता है। फिर राम आ जाता है ऐसे सब आ जाते हैं। तो यही बेईमान मन ही तो है जिसने पहले लंका को रचा था। मन ही तो मय दानव है

बपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका रचित मन मय मनुजरूपधारी।

मन ही में तो मोह आया, यह रावण बैठ गया फिर इन्द्र देवताओं का राजा, इन इंद्रियों में बैठे हुए सुरों का राजा है यही मन। इसे काम ने वसीभूत कर लिया, कामरूपी मेघनाद ने। यह जो श्वांस चलती है इस शरीर में, यही तो स्वर्ग है। और कोई लोक बना है क्या आकाश में। अगर कुछ लोक वगैरह होते तो वहां राकेट पहुँच गये होते। वहां तो कुछ बना नहीं। न कोई देवता है न कोई भगवान का लोक है वहां। भगवान तो आकाशवत है इसलिए उधर ही उसका ठिकाना बता देते हैं लोग। भगवान तो सबके अन्दर है। यहीं शरीर रूपी इस ब्रह्माण्ड के अन्दर सब हैं–लंका और अयोध्या, चित्रकूट और पंचवटी। है एक ही चीज, अवस्था भेद है। जैसे एक मकान है। पहले उसमें दुकान लगती रही, अब उसमे प्राइमरी स्कूल खुल गया। धीरे धीरे वह स्कूल कालेज बन गया। तो ऐसे उस एक ही मकान के कई नाम होते गये, काम के अनुसार। प्राइमरी स्कूल फिर डिग्री कालेज, है जगह वही। यह भी विद्यालय है, वह भी विद्यालय था। पढाई दोनो में होती है। लेकिन देखिए स्तर अलग अलग है। ऐसे ही सब क्रिया साधन शरीर में हो रहे हैं। इसी मे लंका बन गयी, फिर अवध बन गया, जनकपुर बन गया फिर चित्रकूट बन गया। साधना के स्तर से इसके ये नामकरण हैं। ऐसे यह जीव सीढ़ी दर सीढ़ी साधना पूरी करके अपने स्वरूप में स्थित

हो जाता है। निरवयव स्वरूप में जाग्रत हो जाता है। परवस से स्ववस हो जाता है। यह जीवात्मा विभीषण राजा बन जाता है।

अवध कहते हैं अवधि, मानवतन की अवधि, यह समय जो हमें-तुम्हें मिला हुआ है। भगवान महान कृपा करके यह अवसर देते हैं। मनुष्य योनि दे देते हैं। मानव तन के रूप में एक मौका, एक समय, यह अवधि प्राप्त हुई। इस अवध में ही भगवान पैदा होते हैं। शरीर के बिना तो कहीं पैदा होंगे नहीं। साधन ही नहीं बनेगा शरीर के बिना –

तन बिनु वेद भजन नहिं बरना

इस बात को समझने का प्रयास किया जाय।

गोस्वामी जी बार बार भक्ति का आग्रह करते हैं, ज्ञान का ह्रास करते हैं। कभी कभी कवि लोग ऐसा करते हैं। लेकिन देखिए वही गोस्वामी जी क्या कहते है –

ज्ञान अवधेश गृह गेहनी भक्ति शुभ। तत्र अवतार भू भार हर्ता।।

इसको अच्छी तरह से समझ लो। भक्ति कहते हैं लगन को। जानकारी उस तत्व की हो जाय, कि किसमें हम लगन करें, वह है ज्ञान। जानकारी होना ज्ञान है और उसमें फिर लगन लग जाय यह भक्ति है। इन्हीं ज्ञान और भक्ति रूप दशरथ कौशल्या से राम पैदा होते हैं।

हरिः ओम